वैदिक वाङ्मय में न्याय एवं दण्डविधान

डा. अजय कुमार*

यह सर्वविदित है कि केवल ईश्वर ही सर्वगुणसम्पन्न, सर्वशक्तिसंपन्न, और सर्वदोषरहित है। वही पूर्णतया पवित्र एवं सदाचारी आत्मा है। ईश्वर का ही अंशभूत मानव कथमपि पूर्णतया पवित्र एवं सदाचारयुक्त नहीं है। अर्थात् इस संसार में में सर्वथा पवित्र मनुष्य दुर्लभ है। काम, क्रोध, मद, लोभ एवं इर्ष्या मनुष्य के प्रबल शत्रु हैं। इन दुर्गुणों के वशीभूत होकर मनुष्य अपने अधिकार क्षेत्र एवं मर्यादा का अतिक्रमण करके अधिक से अधिक भूमि एवं धन पर अधिकार करना चाहता है। वर्त्तमान समय में हो रहे, आर्थिक घोटाले, घूसखोरी, स्त्रियों के साथ अन्याय एवं बलात्कार, दिनदहाड़े हत्याएँ आदि उदाहरणके रूप में मनुष्य के काम, क्रोध, लोभ, मोह और ईर्ष्या के दुष्परिणामों को देखा जा सकता है। समाज में निर्वलों के अधिकारों का हरण सबल के द्वारा कर लिया जाता है। फलस्वरूप समाज में सर्वत्र, अशान्ति एवं भय का वातावरण व्याप्त हो जाता है। कहने का अभिप्राय है कि मनुष्य के मौलिक अधिकारों का हनन नहीं होना चाहिए। अतः समाज या पृथिवी पर न्याय–व्यवस्था की आवश्यकता है।

न्याय का प्रयोजन है– निष्पक्ष न्याय करना, अपराधी को दण्ड देना और निरपराध को दण्डमुक्त करना। इसका उत्तरदायित्व मुख्य रूप से राजा पर होता है। राजा प्रजा से कर लेता है और उसके बदले में प्रजा को संरक्षण देना, न्याय देना, उसका परम कर्त्तव्य होता है। काठक संहिता में न्यायधीश के लिए अध्यक्ष शब्द आया है और कहा गया है कि क्षत्रिय राजा वैश्य को दण्ड देने का अधिकारी है1–''राजन्येनाध्यक्षेण वैश्यं ध्नन्ति। '' साथ ही यह भी कहा गया है कि राजा को चाहिए कि वह न्याय संबंधी निर्णय के लिए अपने परामर्शदाताओं में ब्राह्मण पुरोहित को रखे2– '' तस्माद् ब्रह्मपुरोहितं क्षत्रम्।'' अथर्ववेद में न्यायधीश के लिए ''बृहत् अध्ष्ठाता'' शब्द आया है3– ''बृहन् एषामधिष्ठाता।'' इस सूक्त में वरूण देवता को न्यायधीश राजा के रूप में प्रस्तुत किया गया है और कहा गया है कि वह देवता भी हैं और मनुष्य भी4– ''स दैवो वरूणो यश्च मानुषः।'' वरूण देव के विषय में कहा

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, बी.एस.के. कॉलेज, मैथन धनबाद, झारखण्ड।

गया है कि उसके असंख्य दूत हैं । वे सर्वत्र संसार में फैले हुए हैं। राजा वरूण संसार के सभी मनुष्यों के छोटे से छोटे कार्यों को भी देखता है। मनुष्य का उठना, बैठना, चलना, गुप्त बात करना, सबकुछ राजा वरूण को ज्ञात हो जाता है। पलक झपकाना, आंख खोलना एवं बन्द करना आदि छोटी क्रियाएँ भी उसके नजर में रिकॉर्ड हो जाती है5 –

''दिवः स्पशः प्र चरन्तीमदस्य

स्हस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्।''

वेदों के गुप्तचर के लिए 'स्पश्' शब्द आया है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में अनेक मंत्रों में वरूण के गुप्तचरों का उल्लेख है और उनके द्वारा संसार के सारे समाचार ज्ञात करने का उल्लेख है6–। शतपथ ब्राह्मण में राजा को अभिषेक के समय दण्ड से आघात करके बताया गया है किवह न्यायधीश का कार्य करता है। वह अन्यों को दण्ड देने का अधिकारी है। परन्तु उसे भी दण्ड दिया जा सकता है7– ''तस्माद् राजा दण्डयः, यदेन दण्डवधम् अतिनयन्ति।''ऋग्वेद एवं तैत्रीय संहिता में न्यायकर्त्ता के लिए मध्यशी शब्द का उल्लेख है। साथ ही उसे उग्र अर्थात न्याय में कठोर कहा गया है।8–उग्रो मध्यमशीखि।'' सायणाचार्य के अनुसार मध्यमशीका का अर्थ मध्यस्थता करने वाला राजा होता है9। अन्यत्र इसकी व्याख्या की गयी है–''पक्षपातशून्यः'' निष्पक्ष निर्णय देने वला। काठकसंहिता में न्यायाधिकारी के लिए ''मध्यमेष्ठ'' शब्द आया है और कहा है कि प्रजा राजा को अपना न्यायाधिकारी बनाती है10–''क्षत्रमेव विशो मध्यमेष्ठ करोति ''।

ऋग्वेद और अथर्ववेद के कतिपय मंत्रों से न्याय के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। ऋग्वेद का कथन है कि सत्य और असत्य में विवाद हुआ। राजा न्याय करता है। वह सत्य की रक्षा करता है और असत्य पक्ष को दण्डित करता है''–''सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते। तयोर्यत्सत्यं यतरद् ऋृजीयः, तदित सोमोऽवति हन्त्यासत्।'' वह अपराधी को दण्ड देता और असत्यभाषी को कड़ी सजा देता है और दोनों को कारागार में डाल देता है12–''हन्ती रक्षो हन्त्यासद् वदन्तम्, उभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते।'' अथर्ववेद के शब्दों में भी असत्यभाषी को दण्डित कर निरपराधी को दण्डमुक्त कर देना चाहिए13– ''छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं, यः सत्यावादी–अति तं सृजन्तु।'' अपराधी को किसी भी परिस्थिति में छोड़ा नहीं जाना चाहिए14–'' शतेन पाशैरभि धेहि वरूणैनं माते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः। '' इसका अभिप्राय यह है कि अपराधी को दण्ड देना और निरपराध को दोषों से मुक्त करना ही न्याय है।

अष्टाध्यायी में महर्षि पाणिनी ने न्याय शब्द का अर्थ ''अभ्रेष'' लिखा है अभ्रेष का अर्थ है – जो परम्परा से प्राप्त आचार या विधि है उसका अस्खलन न्याय

है15 । गोपथ ब्राह्मण में श्रेष और अश्रेष दो प्रकार के न्याय का वर्णन है16– '' अश्रेष नियन्ति, श्रेषं न्येति। '' दोनों में अन्तर यह है कि एक परम्परागत पद्धति पर आश्रित है दूसरा स्वविवेक पर निर्भर है। न्याय में दोनों का ही महत्व है। स्मृतिकारों ने भी स्वीकार किया है कि न्याय करते समय लोकाचार, देश, काल आदि का भी ध्यान रखना चाहिए। महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार दण्ड देते समय देश, काल, बल, आयु कर्म और आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखना चाहिए17– ''ज्ञात्वाऽपराधं देश च कालं बलमथापि वा। वयः कर्म च वित्तं च दण्ड्ं दण्ड्येषु पातयेत्।'' बृहतपराशर और वृद्ध हारीत स्मृतिकारों का भी यह मत है18 महर्षि मनु का कथन है कि देश, कुल और जाति की परंपराओं को ध्यान में रखते हुए ही निर्णय करना चाहिए19–

''तद्देश–कुल–जातीनाम्, अविरूद्धं प्रकल्पयेत्।''

यहाँ विशेषरूप से ध्यातव्य है कि वेदों में न्यायधीश के अधिकार एवं कर्त्तव्य न्याय–पद्धति, साक्ष्यविधि, न्यायपालिका का स्वरूप, न्यायपालिका के अधिकारी आदि विषयों पर विशद् विवरण उपलब्ध नहीं होता है, प्रत्युत् स्मृतिकारों ने ही अपनी स्मृतिग्रन्थों में पर्याप्त मात्रा में वर्णन किया है।

मनु याज्ञवल्क्य और विष्णुस्मृतियों में तथा महाभारत में दण्ड की उपयोगिता पर विशद् विवेचन किया गया है। महर्षि मनु का कथन है कि ईश्वर ने राजा के कार्यों की सफलता और जीवों की रक्षा लिए दंड की सृष्टि की थी20। दंड के भय से सारे जीव अपने–अपनी कर्मो को सम्पन्न करते हैं21। दण्ड ही राजा है। पुरूष और नेता है22 (मनु–7.17)। दंड ही राज्य को चलाता है, वही प्रजा पर शासन करता है और उसकी रक्षा करता है। दंड सदा जागता रहता है, वही धर्म है23–

''दण्डःशस्ति प्रजाः, सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।

दण्ड सुप्तेषु जागर्ती, दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।।

शास्त्र के अनुसार ही दण्ड का प्रयोग किया जाना चाहिए। धन–लोभ या प्रमाद से किया गया दंड धन–जन को हानि पहुँचाता है 24 (मनु–7.19) । मनु ने दंड के अभाव का चित्रण करते हुए लिखा है कि यदि दंड न हो तो बलवान् निर्बलों को सताने लगेंगे। उन्हें वैसे ही कष्ट देंगे जैसे लोहे की छड़ में बींधकर मछलियों को पकाया जाता हैं। बलवान निर्बलों की संपत्ति लूटकर मालिक बन बैठेंगे। किसी का किसी वस्तु पर स्वामित्त्व नहीं रह जाएगा 25 (मनु–7.20–21)। महाभारत शान्तिपर्व में भी दण्ड–विषय पर विस्तृत विवेचन किया गया है26 (महा.शा.–121–122)। दंड का उद्देश्य है–दुष्टों का निग्रह अर्थात् दमन27– '' दुष्टानां निग्रहो दंडः।'' दंड का ही दुसरा नाम व्यवहार है और इस व्हार का ही नाम वेद है28– '' यश्च दंडःस दृष्टोनो,

व्यवहारः सनातनः। व्यवहारश्च दृष्टोयः स वेद इति निश्चितम्।'' सारा राजकाज और प्रशासन दंड पर ही अबलम्बित है29– '' दण्डे सर्वं प्रतिष्ठितम्।'' दण्ड का अधिकार क्षेत्र बहुत व्यापक है। जो अपने धर्म का पालन नहीं करता है, उसे राजा अवश्य दंड दे, चाहे वह माता–पिता, भाई, स्त्री या मंत्री ही क्यों न हो31–

''माता–पिता च भ्राता च, भार्या चैव पुरोहितः ।

नादण्ड्यो विद्यते राज्ञो, यः स्वधर्मे न तिष्ठति।।''

इससे स्पष्ट है कि प्रशासन के लिए दण्ड–व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है। दण्ड के भय से ही बलवान् निर्बलों का शोषण नहीं कर पाते। अन्यथा राज्य में पूर्ण अव्यवस्था और आराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

चारों वेदों में दंड शब्द का प्रयोग 'डंडे' के अर्थ में है। न्याय विधि के रूप में उसका प्रयोग नहीं है। शतपथब्राह्मणमें दण्ड–विधान के रूप में दण्ड शब्द शब्द का प्रयोग मिलता है। राजा भी दंडनीय होता है। उसे केवल मृत्यु दंड से मुक्त किया जाता है32– ''तस्माद् राजा दण्ड्यः, यदेन दण्डवधम्अतिनयन्ति''। आचार्य यास्ककृत निरूक्त में दण्ड शब्द का प्रयोग मिलता है। अपराधी व्यक्ति को दण्ड्य कहते है। यह दंड पाने का अधिकारी है। यास्क ने इसी प्रसंग में दंड शब्द की निरूक्ति 'दम' धातु से की है और आचार्य औपमन्यव को उद्धृत किया है कि ''दण्डः दमनात्33''–दण्ड्यः पुरूषः, दण्डम अर्हतीति वा। दण्डः दमनाद् इत्यौपमन्यवः। '' दमन का अर्थ है– ''अपराधी को अपराध के लिए दंड दिया जाए। गौतम स्मृति में भी 'दम' धातु से दण्ड की निष्पत्ति मान गयी है। गौतम का कथन है कि जो अदान्त है अर्थात् नियंत्रण में नहीं है, उन्हें नियंत्रण में लाया जाए34– ''दण्डो दमनाद् इत्याहुः, तेनादान्तान् दमयेत्।'' महाभारत ने दुष्टानां निग्रहः दण्डः'' अर्थात अपराधियों को नियंत्रण में रखना ही दंड कहा है35 (शन्ति. 122–40)। स्मृतियों में सभी प्रकार के विवादों को की दण्ड–व्यवस्था है। याज्ञवल्वयस्मृति और उसकी टीका मिताक्षरा में सभी प्रकार के झगड़े, विवाद या मुकदमों को 'व्यवहार' नाम दिया गया है36– ''व्यवहारः, तस्य पदं विषयः।''

ऋग्वेद और अथर्ववेद में अपराध और दंड से संबंध तीन सूक्त हैं। इन सूक्तों में प्रमुख अपराधी अपराध एवं दंडो का उल्लेख है। छली, कपटी या मायावी को यातुधान की सजा प्रदान की गयी है। यातुधान की स्त्री को यातुधानी कहा गया है। यातुधान का लक्षण है–झूठ बोलना, अशिष्ट आचरण करना38, कटुबचन का प्रयोग करना, आदमी एवं पशुओं का मांस खाना39, कुकर्म करने वाला, मानवीय सद्भावना से रहित होना इत्यादि। यातुधन को अनेक प्रकार के दण्ड देने

का विधान है– इन्हें आग से जला दे40, इनकी हड्ड़ी पसली तोड़ दिया जाए41, इनके हाथ काट दिया जाए42, इन्हें शारीरिक एवं आर्थिक दंड दिया जाए एवं कारागार में डाल दिया जाए43, यातुधान स्त्री या पुरूष कोई भी हो, उसका वध कर दिया जाए44 इत्यादि।

वेदों एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में रक्षस् अपराधी चर्चा हैं इन्हें राक्षस भी कहा जाता है। इनके लक्षण कुछ इस प्रकार है– ये कुटिल एवं दुश्चरित्र होते हैं। ये अपवित्र रहते हैं, रात में चोरी या डाका डालना इनका काम है45 तथा ये यज्ञ में विघ्न डालते हैं46। राक्षसों के लिए दंड विधान इस प्रकार है– राक्षसों को अग्नि में जलाकर पीड़ित किया जाए47 इनका बध कर दिया जाए 48, इन्हें घातक अस्त्र से मारा जाए49, इन्हें पाषाण से मारा जाए50, ये जहाँ भी पकड में आवे, इन्हें पत्थर से पीस दिया जाए51, इनके हाथ, सिर एवं पैर काट दिए जाएँ52 इन्हें राज्य से वहिष्कृत कर दिया जाए, इत्यादि।

वेदों में चोरों एवं डाकुओं के लिए चोर स्तेन, स्तेयकृत्, तस्कर, मलिम्लु और मलिम्लुच शब्दों का प्रयोग किया गया है। अथर्ववेद के अनुसार ये लोग न केवल मनुष्यों का सामान चुराते हैं, वल्कि गाय एवं घोडों को भी चुराते हैं तथा मनुष्यों का भी बध कर डालते हैं53। पृथिवीसूक्त में वर्णन है कि नगर मार्ग आदि को चोरों और डाकुओं से रहित किया जाए54। इन डाकुओं के लिए दण्ड–विधान इस प्रकार है– इन्हें मृत्यु दण्ड दिया जाए55, इन्हें घातक अस्त्रों से मारा जाए56, इन्हें मारकर राज्य से भगा दिया जाए57, चोर के गर्दन एवं सिर काट दिया जाए58, इन्हें हाथ एवं पैर से रहित कर दिया जाए।, खंभे पर लटकाकर फांसी दे दिया जाए59–

''प्र पादौ–प्र हस्तौ न यथाशिषत् ।

संपिष्टो अपायति। शुष्के स्थाणावपायति।।''

असत्य भाषण करनेवाले, मर्मवेधी बचन बोलनेवाले, चुगली करनेवाले आदि के लिए वेदों में पिशुन और मृध्रवाच् शब्द का प्रयोग किया गया हैं इनके लिए दण्डविधान इस प्रकार है–झूठ बोलने वाले को कैद में डाला जाए60, असत्यभाषी को बंधन में अवश्य डाला जाए61 , इन्हें आग से जलाया जाए62 , असत्यभाषी का अरितत्व ही समाप्त कर दिया जाए63, झूठा आरोप लगानेवाले का सांप से कटवा यिा जाए या उनका धन छीनकर निर्धन बना दिया जाए64 , –'' अहये वा तान् प्रददातु सोम, आ वा दधातु निर्ऋतेरूपस्थे।'', इन्हें मृत्युदण्ड दिया जाए65 , चुगलखोरों (पिशुन) को घातक अस्त्र से बध कर दिया जाए66, कटु एवं असत्य बोलनेवाले को (मृध्रवाच् को) कठोर दंड दिया जाए67 –''मृध्रवाचः जघान।''

वेदों में भक्षक या समाज के शोषक वर्ग के लिए 'अत्रिन्' शब्द का प्रयोग किया गया है। इनके लिए कहा गया है कि तीक्ष्ण आयुधों से प्रहार करके इन्हें नष्ट कर दिया जाए68, इन्हें कठोर सजा दी जाए69, इन्हें आग से जला दिया जाए70। कच्चा मांस खाने वाले तथा मृत पशुओं आदि को खाने वाले का 'क्रव्याद्' की संज्ञा प्रदान की गयी है। इन्हें ज्ञान की देवी एवं घोर चक्षुवाला कहा गया है। इन्हें कठोर दंड डेने का विधान है71। भक्ष एवं अभक्ष्य का विवेकन करनेवाले, सब कुछ खाने वाले का ''किमीदिन्'' कहते हैं। इन्हें अपराधी मानकर दण्ड दिया जाए72– ''द्वेषोधत्त्मनवायं किमीदिने।''

पाप की प्रकृति वाला व्यक्ति के लिए अघशंस शब्द का प्रयोग किया गया है। इनके लिए इन दंडो का विधान है– इन्हें अग्नि में जलाया जाए73, पृथ्वी के वातावरण को नष्ट करनेवाले अघशंसों को घातक अस्त्रों से मारा जाए74–''वधं, सं पृथिव्या अधसंशाय तर्हणम्।'' जो जड़ देवों की प्रसन्न करने के लिए पशुओं या मनुष्यों की बलि देते हैं उन्हें मूरदेव कहा गया है। ऋग्वेद के आदेशानुसार इनके गर्दन काट देने चाहिए75–विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु।'' बुरी निगाह वाले, बुरी दृष्टि से देखने वाले या आँख से जादू–टोना करने वाले को'' ''चक्षुर्मन्त्र'' की संज्ञा प्रदान की गयी है, इनके लिए अथर्ववेद का आदेश है कि इनकी हड्डी पसली तोड़ की जाए76–''चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि।''

निष्कर्षतः कहा जा सकाता है कि वैदिक युग में समाज में न्याय व्यवस्था स्थापित करने के लिए अपराध के लिए कठोर दंड–व्यवस्था थी। तत्कालीन राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली में तत्क्षण अपराधी को दण्डित किया जाता था। निर्विवादतः शासन प्रणाली में तत्क्षण अपराधी के अपराध के लिए कठोर से कठोर दंड का विधान होना चाहिए। इस संदर्भ में वैदिक वाङमय की जो दृष्टि है, प्रशंसनीय है। किन्तु अनेकत्र अपराधी के अपराध के लिए आग में जलाने, पेट फाड़ने, हाथ पैर, सिर तथा गर्दन काटने, उसे पत्थर से पीस देने जैसे कठोरतम दंड विधान हैं ये आपत्तिजनक है, मानवता के विरूद्ध है। प्रत्येक राजा का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि उसके प्रताप से ही अपराधी अपराध करने को सौ बार सोंचे। द्वितीय, किसी अपराधी को एक नियत समय तक कारागार में डालने जैसे दंड प्रदान कर उसकी गलतियों का एहसास काराया जाना चाहिए ताकि वह दुबारा अपराध करने का संकल्प ही न ले। आग को आग से नहीं बुझाया जा सकता है। उसे बुझाने के लिए जल की आवश्यकता होती है। अपराधी नकारात्मक भावों से प्रेरित होता है, समाज में ऐसी भावना पैदा करने का प्रयास होना चाहिए ताकि लोगों में सकारात्मक भाव एवं सात्विक प्रवृत्ति का उदय हो। सात्विक प्रवृत्ति के प्रबुद्ध होने पर कोई भी व्यक्ति अपराध कार्य के लिए उद्यत नहीं होगा।

संदर्भग्रन्थ–

1. काठक संहिता–27.4
2. काठक संहिता–27.4
3. अथर्ववेद–4.16.2
4. अथर्ववेद–4.16.2
5. अथर्ववेद–4.16.2
6. ऋग्वेद–1.25.13
7. शतपथ ब्राह्मण–5.4.47
8. ऋग्वेद–10.97.12
9. सयणभाष्य–1
10. काठक संहिता–21.10
11. ऋग्वेद–7.10412
12. ऋग्वेद–7.104.13
13. अथर्ववेद–4.26.6
14. अथर्ववेद–4.16.7
15. अष्यध्यायी–3.3.37
16. यानवलवयस्मृति–1.3.68
17. ब्हत्पराशास्मृति–12.84
18. गोपथ पूर्व–3.2–3.3
19. मनुस्मृति–8.46
20. मनुस्मृति–7.14
21. मनुस्मृति–7.15
22. मनुस्मृति–7.17
23. मनुस्मृति– 7.18
24. मनुस्मृति– 7.19
25. मनुस्मृति–7.20
26. महाभारतशान्तिपर्व अध्याय–121 तथा–122
27. महाभारतशान्तिपर्व अध्याय–122.140
28. महाभारतशान्तिपर्व अध्याय–121.56
29. महाभारतशान्तिपर्व अध्याय–121.1
30. महाभारतशान्तिपर्व अध्याय–121.124
31. महाभारतशान्तिपर्व अध्याय–121.60
32. शतपथ ब्राह्मण–5.4.4.7
33. निरूक्त– 2.2
34. गौतमस्मृति अध्याय–।।
35. महाभारतशन्तिपर्व–122.40
36. याज्ञ0स्मृति, मिताक्षप टीका–2.6
37. मनुस्मृति–8.4.7
38. अथर्ववेद–8.3.12
39. अथर्ववेद–8.3.15
40. अथर्ववेद–8.3.2
41. अथर्ववेद– 8.3.4
42. अथर्ववेद–8.3.6
43. अथर्ववेद–8.3.11
44. ऋग्वेद–7.104.24
45. ऋग्वेद–7.104.17
46. ऋग्वेद– 7.104.18
47. ऋग्वेद– 7.104.1
48. ऋग्वेद– 7.104.7
49. ऋग्वेद– 7.104.16
50. ऋग्वेद– 7.104.17
51. ऋग्वेद– 7.104.18
52. ऋग्वेद– 7.104.25

53. अथर्ववेद– 8.3.10
54. अथर्ववेद– 8.3.23
55. अथर्ववेद– 8.3.26
56. अथर्ववेद– 8.4.10
57. अथर्ववेद– 12.1.47
58. अथर्ववेद– 8.4.10
59. अथर्ववेद– 4.3.4–5
60. अथर्ववेद– 19.47.7
61. अथर्ववेद– 19.49.10
62. अथर्ववेद– 4.16.4
63. अथर्ववेद– 4.16.7
64. अथर्ववेद–8.3.21
65. अथर्ववेद–7.104.8
66. ऋग्वेदन– 7.104.9
67. ऋग्वेदन– 7.104.13
68. अथर्ववेद– 7.104.20
69. अथर्ववेद– 20.73.6
70. अथर्ववेद– 7.104.5
71. ऋग्वेद– 7.1.1
72. ऋग्वेद– 1.36.14
73. ऋग्वेद– 7.104.2
74. ऋग्वेद– 7.104.2
75. ऋग्वेद– 7.104.4
76. ऋग्वेद– 7.104.24

*****